संस्करण - 3 अंक - 2 अप्रैल 2023

प्रज्ञाम्बु

cGanga
गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर द्वारा संचालित गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र (cGanga) की इस त्रैमासिक पत्रिका का उद्देश्य जल और नदी पुनरुद्धार एवं संरक्षण के प्रबंधन से संबंधित विभिन्न विषयों पर देश-विदेश से उपलब्ध पारंपरिक ज्ञान एवं विज्ञान के समन्वय पर आधारित जानकारी संबंधित संस्थाओं एवं नागरिकों तक पहुचाना है।

समर्थ नदियां, उपजाऊ भूमि

किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए समस्या के यथार्थ रूप को पहचानना आवश्यक है। नदियों के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है, नदियों के संरक्षण और पुनर्जीवन की योजनाएं बनाने से पूर्व नदी की असल समस्याओं को पहचानना जरूरी है। इसके अभाव में संभव है कि कुछ कारण जो ऊपरी दृष्टि से देखने पर वृहद और गंभीर प्रतीत होते हैं हम उन कारणों के उन्मूलन की ओर अधिक ध्यान दें, जबकि वास्तव में वे नदी की निर्मलता पर बहुत कम प्रभाव डालते हैं। ऐसे में बड़ी समस्याओं और प्रमुख कारकों की ओर से ध्यान हट जाता है। प्रज्ञाम्बु के संस्करण – 2 के चौथे अंक में हम ने धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नदियों पर होने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया। संस्करण – 3 के पहले अंक में अंतिम क्रियाओं के नदियों की निर्मलता पर होने वाले प्रभाव का आकलन किया। इसी श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए, इस अंक में हम कृषि और नदियों की निर्मलता के संबंध में विमर्श करेंगे।

नदियों की निर्मलता पर नकारात्मक प्रभाव डालने के लिए जिन कारकों को जिम्मेदार माना जाता है, उनमें कृषि का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है। बीते कुछ सालों में जनमाध्यमों द्वारा बार–बार इस परिकल्पना को दोहराया गया कि खेती में इस्तेमाल होने वाली रासायनिक खाद, उर्वरक और कीटनाशक पानी के साथ मिलकर जलस्रोतों, खासकर नदियों तक पहुंचते हैं, जिससे नदियों की निर्मलता पर दुष्प्रभाव पड़ता है। बहुप्रचारित मान्यता के अनुसार रासायनिक खाद में मौजूद नाइट्रोजन और फॉस्फोरस नदी के जल के रासायनिक संतुलन को प्रभावित करते हैं और जलीय वनस्पतियों की वृद्धि दर को बढ़ा देते हैं। दूसरी ओर कीटनाशकों में मौजूद लवण और भारी धातुएं नदी के जल के रासायनिक संतुलन को बिगाड़ देते हैं।

नाईट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्वों की वजह से नदी के जैवरासायनिक असंतुलन के लिए वैश्विक स्तर पर कृषि को उत्तरदायी ठहराया जाता है। प्रज्ञाम्बु के इस अंक में हम इसी तथ्य को भारतीय परिप्रेक्ष्य में परखेंगे और यह जानने की कोशिश करेंगे कि भारत में नदियों की निर्मलता को प्रभावित करने में कृषि की क्या भूमिका है। यदि कृषि के कारण नदियों की निर्मलता प्रभावित हो रही है तो इसे किस तरह नियंत्रित कर सकते हैं।

हमारे देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बुनियाद कृषि है। ऐसे में नदी की निर्मलता में कृषि की जवाबदेही तय करने और कृषि के संबंध में बदलाव का सुझाव देने से पहले हमें नदियों के पानी की गुणवत्ता को तीन भागों में वर्गीकृत कर के जांचना होगा। शहरी क्षेत्र में नदी के जल की गुणवत्ता, ग्रामीण क्षेत्रों में नदी के जल की गुणवत्ता और औद्योगिक क्षेत्रों में नदी के जल की गुणवत्ता। इस तरह के स्पष्ट और वर्गीकृत आंकड़ों के अभाव में कृषि को नदियों की निर्मलता को दुष्प्रभावित करने का प्रमुख जिम्मेदार मानना और बताना न्यायसंगत नहीं होगा। इस तर्क को यमुना नदी के उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। वजीराबाद बैराज से ओखला बैराज के बीच यमुना नदी का 22 किलोमीटर का स्ट्रेच इस विशाल नदी का सबसे प्रदूषित हिस्सा है। इस 22 किलोमीटर में यमुना शहरी क्षेत्र में बहती है। यह यमुना नदी की कुल लंबाई का 2 प्रतिशत हिस्सा है और नदी के प्रदूषण के लिए 80 प्रतिशत जिम्मेदार है। हालांकि यमुना की स्थिति बहुचर्चित है किंतु इसी तरह के आंकड़े अन्य नदियों के संदर्भ में भी जुटाने के बाद ही नदियों की निर्मलता को प्रभावित करने के विषय में कृषि की भागीदारी तय करनी होगी। कुछ समय पूर्व केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा जारी की गई रिपोर्ट का विश्लेषण करने पर भी कृषि नदियों की निर्मलता को बाधित करने का मुख्य कारण प्रतीत नहीं होती। आगे के पृष्ठों पर इस रिपोर्ट के निष्कर्ष विस्तार से पढ़े जा सकते हैं।

सालों से यह बात दोहराई जा रही है कि खेती के दौरान उपयोग में आने वाले विभिन्न उर्वरक और कीटनाशक बारिश के पानी के साथ मिलकर नदियों तक पहुंच जाते हैं और उर्वरकों में मौजूद नाईट्रोजन और फॉस्फोरस जलीय खरपतवारों के लिए अनुकूल परिस्थितियां निर्मित कर देते हैं जिसके चलते अवांछित जलीय वनस्पतियों खासकर जलकुंभी, वॉटर मॉस (काई), नील हरित शैवाल (साईनोफाईट) में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। ऐसी स्थिति को ही यूट्रोफिकेशन कहा जाता है।

यूट्रोफिकेशन की वजह से नदी के परितंत्र का संतुलन बिगड़ जाता है। वैसे तो जलीय वनस्पतियों की उत्पत्ति एक प्राकृतिक प्रक्रिया है लेकिन जब मानवीय हस्तक्षेप की वजह से नदी में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है तो जलीय वनस्पतियों की उत्पत्ति की दर भी कई गुना बढ़ जाती है। नाईट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्वों की बहुलता और शीघ्र वृद्धि और तेज प्रजनन की मूल प्रकृति के चलते जलकुंभी या नील हरित शैवाल जैसी वनस्पतियां नदी या जलाशय की पूरी सतह पर फैल जाती है जिसके कारण सतह के अंदर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच पाता और उस जलीय परितंत्र की मूल वनस्पतियां प्रकाश संश्लेषण के अभाव में समाप्त होने लगती हैं। जलीय खरपतावारों की मौजूदगी की वजह से सतह के नीचे ऑक्सीजन की कमी होने लगती है। इसके चलते मछलियों और अन्य जलीय जंतुओं को सांस लेने के लिए आवश्यक ऑक्सीजन नहीं मिलती। नतीजतन जलीय जंतुओं की मौत होने लगती है। ऑक्सीजन के अभाव में प्राकृतिक अपघटन की प्रक्रिया भी रूक जाती है। एक के बाद एक समस्याएं झेलते हुए वह जलस्रोत मृतप्राय हो जाता है। इन समस्याओं के चलते नदी के संसाधन और नदी से इंसानों को प्राप्त होने वाली सेवाएं बाधित होती हैं।

दूसरी ओर यह बात भी बहुप्रचारित है कि खेती में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशक पानी के साथ घुलकर नदियों और अन्य जलस्रोतों तक पहुंचकर जलस्रोतों में प्रदूषण को बढ़ाते हैं।

उपरोक्त मान्यता समूचे विश्व में पर्यावरण और नदी संबंधी विचार–विमर्श में अनेक बार दोहराई

जा चुकी है। आइए इस मान्यता को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखते और परखते हैं। भारत के संदर्भ में देखा जाए तो भारत के ज्यादातर इलाकों में मानसून सिर्फ दो या तीन महीने रहता है। यदि बारिश के जल के साथ बहकर आने वाले पोषक तत्व नदियों को प्रदूषित कर रहे हैं तो मानसून की समाप्ति के बाद प्रदूषण का स्तर खुद–ब–खुद कम हो जाना चाहिए क्योंकि मानसून समाप्त होने के बाद सरफेस रनऑफ (भूमि की सतह से बहकर आने वाले पानी) नदियों तक नहीं पहुंचता। मानसून के अतिरिक्त अन्य मौसम में कृषि में इस्तेमाल किये जा रहे उर्वरक, खाद या कीटनाशक का नदियों तक पहुंचने का कोई मार्ग या माध्यम ही नहीं है। हमारे देश में सिंचाई इस तरह नहीं की जाती कि सिंचाई के जल से नाले बहने लगे और बहता हुआ पानी नदियों तक पहुंच जाए।

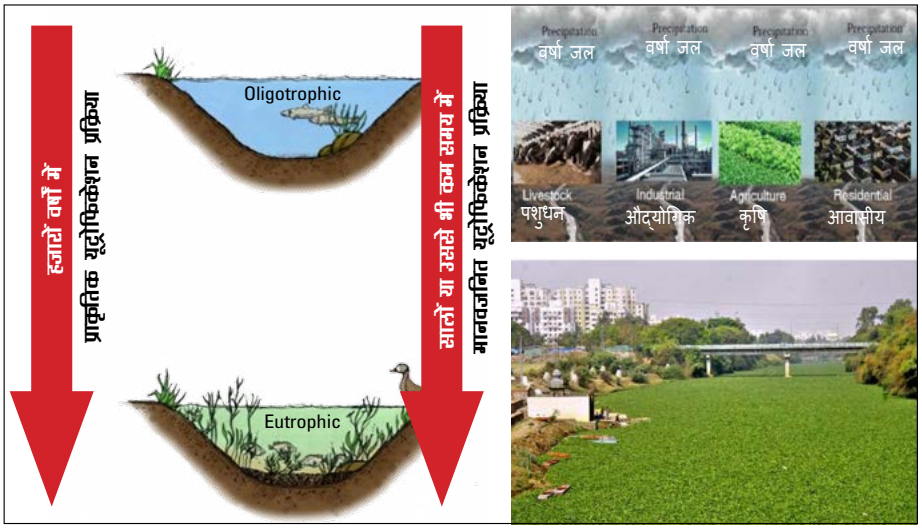

चित्र १. प्राकृतिक यूट्रोफिकेशन, और मानवजनित/सांस्कृतिक यूट्रोफिकेशन प्रक्रिया के समय के पैमाने दिखाते हुए जल निकाय का क्रॉस–सेक्शन। जल निकाय में पोषक तत्वों को जोड़ने वाली मानवीय गतिविधियों के परिणामस्वरूप यूट्रोफिकेशन की गति कई गुना बढ़ जाती है।

उलट बहाव है, कारण

नदियों में कृषि उर्वरकों के पहुंचने की समस्या विश्व के कई अन्य देशों में देखी गई है। जहां सिंचाई के लिए बहुतायत में पानी खेतों में डाला जाता है और पानी उल्टी दिशा में बहते हुए दोबारा नदियों तक पहुंच जाता है, जिसे रिवर्स इरिगेशन फ्लो के नाम से जाना जाता है। भारत में सिंचाई में रिवर्स फ्लो की स्थिति नहीं बनती लिहाजा रसायनों के नदियों तक पहुंचने की संभावना भी कम होती है। मानसून के अतिरिक्त रसायनों के नदियों तक पहुंचने का कोई मार्ग या माध्यम ही नहीं दिखाई देता। मानसून या बारिश नदियों के लिए प्रकृति प्रदत्त स्वच्छता अभियान की तरह होती है, जहां तेज बहाव सारी अशुद्धियों को बहाकर ले जाता है। जब पानी तेज गति से बहता है तो जलकुंभी के पनपने की संभावना नगण्य हो जाती है फिर पानी में पोषक तत्वों की मौजूदगी हो या ना हो।

प्रवाह, ठहराव और मृत झोन

पानी में नाईट्रोजन और फॉस्फोरस, क्लोरोफिल और सूर्य के प्रकाश की मौजूदगी में तीव्र यूट्रोफिकेशन के चलते जलस्रोत मृतप्राय स्थिति में पहुंच जाता है। ऐसी परिघटना तब होती है जब पानी ठहरा हुआ हो जैसे तालाब का पानी, चेक डैम में ठहरा हुआ पानी, ठहरी हुई झील का पानी। हमारे शहरों में कई छोटी नदियां हैं, जो अब नालों में परिवर्तित हो चुकी हैं। ये नदियां कई तरह के रसायनों से युक्त अपशिष्ट जल के साथ बह रही हैं। इस बहते हुए अपशिष्ट जल में जलकुंभी या शैवाल दिखाई नहीं देते यानी कि यूट्रोफिकेशन नहीं होता। स्पष्ट है कि यूट्रोफिकेशन तभी संभव है जब पानी ठहरा हुआ हो।

प्रज्ञाम्बु के इस अंक में हमारा विमर्श और विश्लेषण नदियों की निर्मलता के संदर्भ में है और नदियों में जल प्रवाहित होता है लिहाजा मोटे तौर पर कहा जा सकता है, कि बहती नदियों के लिए जलकुंभी का उगना बड़ी समस्या नहीं है। यदि जलकुंभी नदियों के किनारे या इर्द–गिर्द है तो इसे प्राकृतिक सफाईकर्मी के तौर पर देखा जाना चाहिए। यही जलकुंभी नदी के भीतर है तो इसका नियमित अवलोकन और नियंत्रण दोनों जरूरी है।

हमारे देश में कई नदियों की अविरलता बाधित हो रही है, नदियों की अविरलता में बाधा आना भी उनकी निर्मलता को कायम रखने में एक बड़ा अवरोध है। जब नदियों का पानी ठहर जाता है तो उसमें यूट्रोफिकेशन की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं, इसके फलस्वरूप जो वनस्पतिक प्रजातियां उत्पन्न होती हैं उनकी मूल प्रवृत्ति ही तेज वृद्धि और प्रजनन की है फिर चाहे परिस्थितियां अनुकूल हों या न हों। ठहरे हुए पानी में जलकुंभी की संख्या महज 23 दिनों में सौ गुना बढ़ जाती है। इस चुनौतीपूर्ण परिदृश्य के लिए कृषि और कृषि में इस्तेमाल होने वाले उर्वरकों को दोषी ठहराने के स्थान पर हमें इस परिदृश्य को देखने के लिए अपने दृष्टिकोण को विस्तृत करने की जरूरत है ताकि हम समस्या के सभी पहलुओं को समझ सकें और फिर इसके समाधान की दिशा में कदम उठाएं।

कृषि कम, जलकुंभी ज्यादा

भारत में जलकुंभी जनित समस्याओं का सामना असम राज्य को सबसे अधिक करना पड़ता है जबकि कृषि उत्पादन के शीर्ष राज्यों की सूची में असम का क्रम तालिका में आठवें स्थान पर आता है। यदि खेती ही जलस्रोतों में यूट्रोफिकेशन को उत्प्रेरित करने का प्रमुख कारण होती तो जलकुंभी की समस्या उन राज्यों के जलाशयों में अधिक होती, जहां खेती अधिक होती है। वास्तव में हमें इसके विपरीत परिदृश्य देखने को मिल रहा है। कम खेती वाले राज्य असम में जलकुंभी की प्रचुरता है। दरअसल असम में 712 दलदली भूमि वाले इलाके हैं और 1,125 जलभराव क्षेत्र हैं। इन संरचानाओं में जलजमाव होता है, जल का बहाव नहीं, लिहाजा जलकुंभी के पनपने के लिए आदर्श परिस्थितियां बन जाती हैं। अनुकूल परिस्थितियों की उपलब्धता के चलते असम में जलकुंभी बहुतायत में पाई जाती है। अब यहां के लोग जलकुंभी को समस्या के तौर पर नहीं बल्कि अवसर के रूप में देखने लगे हैं। इन लोगों ने किस तरह चुनौती को अवसर में बदला उसकी चर्चा हम आगे के पृष्ठों पर करेंगे।

क्या एक्वीफर को प्रभावित कर रही है खेती

कई मंचों पर यह भी कहा गया कि खेती में इस्तेमाल होने वाले रसायन सिंचाई के पानी में घुलकर एक्वीफर तक पहुंच रहे हैं, जहां से वे

नदियों तक पहुंच रहे हैं और भू–जल को भी प्रभावित कर रहे हैं। हमारे देश के विभिन्न राज्यों में भू–जल का स्तर अलग–अलग है, साथ ही खेती के लिए फसलों का चयन भी समान नहीं है। इन सबके बावजूद विभिन्न पैमानों पर जब हमने खेती और भूजल के अंतरसंबंधो का विश्लेषण किया तो पाया कि कृषि पर भू–जल या एक्वीफर को प्रदूषित करने का आरोप लगाना भी सही नहीं होगा। आइए समझते हैं,क्यों और कैसे हम इसे नकार रहे हैं। दरअसल हमारे देश में अलग–अलग राज्यों में भूमि की प्रकृति अलग–अलग है। देश के वृहद मैदानी इलाकों में सतह पर कालीमिट्टी, बेसाल्ट और उसके नीचे अवमृदा की पर्त होती है। एक्वीफर इसके नीचे होते हैं, कुछ इलाकों में एक्वीफर 70 फीट गहराई पर होते हैं तो कुछ इलाकों में 100 से 200 फीट की गहराई पर। ऐसे में यह संभव ही नहीं है कि सिंचाई का पानी एक्वीफर तक पहुंचे। इस पानी का अवशोषण पौधों की जड़ें ही कर लेती हैं। वैसे भी आधुनिक समय में स्प्रिंकलर और ड्रिप इरिगेशन जैसी पद्धतियों से खेतों में सिंचाई हो रही है। जिसके चलते ये पानी ना तो सतह से बहकर नदियों तक मिल सकता है और ना ही एक्वीफर की गहराई तक पहुंच सकता है। इसके विपरीत यह जरूर कहा जा सकता है कि पिछले दशकों में विशाल नदी बेसिन की छोटी नदियों के सूखने के कारण कृषि के लिए भूजल का अत्यधिक दोहन किया गया। नतीजतन आज भूजल के स्तर में बहुत गिरावट आ गई है। यमुना की सहायक नदी हिंडन के बेसिन के कई गांव इस समस्या से जूझ रहे हैं। तीन दशक पहले तक वे हिंडन के पानी से सिंचाई करते थे। जब हिंडन सूख गई तो सिंचाई के लिए भूजल का उपयोग किया जाने लगा। आज भूजल का स्तर इतना नीचे गिर गया है कि पीने के पानी की समस्या खड़ी हो गई है। इस समस्या से निपटने के दो ही उपाय है– कृषि की आधुनिक तकनीकों को अपनाना जिससे कम पानी में बेहतर फसलें मिले और दूसरा छोटी नदियों को दोबारा जिंदा करना।

क्या कहते हैं आंकड़े

आइए अब आंकड़ों की ओर नजर डालते हैं। कृषि उत्पादन में भारत के दस अग्रणी राज्यों में महाराष्ट्र पांचवें क्रम पर आता है। उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल क्रमशः पहले और दूसरे पायदान पर वहीं मध्यप्रदेश और कर्नाटक तीसरे और चौथे पायदान पर हैं। अब यदि नदियों में प्रदूषण की बात करें तो नदियों के प्रदूषण के मामले में महाराष्ट्र प्रांत पहले स्थान पर है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा जारी की गई एक रिपोर्ट के मुताबिक महाराष्ट्र में 55 प्रदूषित नदियां (रिवर स्ट्रेच) हैं, जो कि देश में सर्वाधिक है। इसी रिपोर्ट के अनुसार कृषि उत्पादन में शीर्ष स्थान पर स्थित उत्तरप्रदेश में प्रदूषित रिवर स्ट्रेच की संख्या 17 है। इस रिपोर्ट को तैयार करने से पहले देश के सभी राज्यों की नदियों के जल की गुणवत्ता पर सतत निगरानी रखी गई और नदी के पानी की बीओडी यानी कि बायलॉजीकल ऑक्सीजन डिमांड को पैमाना मानते हुए नदियों को श्रेणीबद्ध किया गया। इस रिपोर्ट को देखते हुए यह कह सकते हैं कि नदियों के प्रदूषण के मामले में कृषि को प्रमुख जिम्मेदार मानना तर्कसंगत नहीं है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंयण बोर्ड ने जब उक्त रिपोर्ट को सार्वजनिक किया तो यह स्पष्ट किया कि यह रिपोर्ट 2019 से 2022 के दरम्यान की गई निगरानी, जांच और जांच के नतीजों पर आधारित है जिसमें 2020 के आंकड़ों को शामिल नहीं किया गया क्योंकि 2020 में कोरोना महामारी के चलते कई औद्योगिक गतिविधियां बंद थी लिहाजा उद्योगों से निष्कासित जल नदियों तक नहीं पहुंच रहा था।

यह तथ्य विचारणीय है कि कोरोना काल में हमें लगातार नदियों की निर्मलता के दोबारा कायम होने की खबरें मिल रही थीं। लगभग हर राज्य की प्रसिद्ध नदियों के संबंध में इस तरह के समाचार और तस्वीरें सामने आ रही थी, जो दर्शा रही थी कि लॉकडाउन के चलते नदियों का प्राकृतिक स्वरूप लौट रहा है। यहां गौरतलब है कि इस काल में भी कृषि कार्य जारी था। कोरोना महामारी के चलते देशव्यापी लॉकडाउन में उद्योगों पर ताले लगे और काम रूका लेकिन खेतों में खेती होती रही। यदि खेतों से होकर आने वाले बारिश का पानी नदियों में प्रदूषण का प्रमुख कारण होता तो हमें लॉकडाउन के बाद नदियों के स्वच्छ होने की खबरें नहीं मिलती।

और भी है उदाहरण

बेंगलौर की अलसूर झील जिसे स्थानीय भाषा में हालासुरू झील के नाम से भी पुकारा जाता है, यूट्रोफिकेशन की शिकार है। झील में नील–हरित शैवाल की अवांछित वृद्धि के चलते झील में रहने वाली कई मछलियां खत्म हो गई और झील से उनकी पूरी प्रजाति ही विलुप्त हो गई। पानी का जैव रासायनिक संतुलन भी बिगड़ गया। यह झील बेंगलौर जैसे आधुनिक महानगर के शहरी इलाके में स्थित है, जिसमें खेतों से पानी पहुंचने की कोई संभावना नहीं है। जब खेतों से संपर्क नहीं है तो उर्वरक या रासायनिक खाद के खेतों के जरिए झील तक पहुंचने का कोई मार्ग ही नहीं है। इस झील में शहरी नाले पहुंचते हैं और शहरी अपशिष्ट की मौजूदगी में यह झील तीव्र यूट्रोफिकेशन का शिकार हुई और इसकी सतह पर नील–हरित शैवाल ने अपना कब्जा जमाकर इसे मृतप्राय अवस्था में पहुंचा दिया। स्थानीय प्रशासन ने इस झील को निर्मल करने के कई प्रयास भी किये और प्रशासन की ओर से झील को स्वच्छ बनाने के प्रयास अब भी जारी हैं। पोषक तत्वों की प्रचुरता के चलते निर्मलता को खो चुकी यह झील भी इस बात का उदाहरण है कि नदियों में प्रदूषण की समस्या के लिए खेती को प्रमुख कारण नहीं माना जा सकता। गौरतलब है कि इस झील में सिर्फ यूट्रोफिकेशन की समस्या ही नहीं है बल्कि विभिन्न जांचों में इसके पानी में भारी धातुओं की मात्रा भी तय सीमा से अधिक पाई गई। इससे यह सिद्ध होता है कि नदियों के पानी में भारी धातुओं की मात्रा बढ़ने के एकमात्र जिम्मेदार खेती में उपयोग किये जाने वाले कीटनाशक नहीं हैं।

क्र. सं.	राज्य	सरकारी जल निकाय जिनका सर्वेक्षण किया गया	जल निकायों की स्थिति					
			फंगक्शनल		ड्राइड		यूट्रॉफिक	
			नंबर	%	नंबर	%	नंबर	%
1	उत्तर प्रदेश	329	174	53	122	37	33	10
2	झारखंड	53	38	72	7	13	8	15
3	बिहार	39	15	38	12	31	12	31
4	पश्चिम बंगाल	147	107	73	16	11	24	16
5	उत्तराखंड	10	3	30	5	50	2	20
गंगा बेसिन		578	324	56	162	28	92	16

तालिका 1. गंगा बेसिन में सरकार के स्वामित्व वाले जल निकायों की स्थिति *क्वालिटी कण्ट्रोल ऑफ़ इंडिया, वर्ष 2021*

और भी हैं स्रोत

नदियों में नाईट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे तत्वों की बहुलता के लिए कई स्रोत जिम्मेदार हो सकते हैं। साबुन उद्योग से बड़ी मात्रा में फॉस्फेट निष्कासित होते हैं। यह फॉस्फेट भी औद्योगिक अपशिष्ट, नाले या छोटी नदियों के जरिए बड़ी नदियों तक पहुंच सकते हैं। कपड़े धोने के लिए इस्तेमाल होने वाले डिटरजेंट और बर्तनों की धुलाई के लिए काम में आने वाले डिश वॉश में भी फॉस्फेट बड़ी मात्रा में मौजूद होते हैं। लाखों घरों से निकलने वाला अपशिष्ट जल जब विभिन्न मार्गों से होते हुए हमारी नदियों तक पहुंचता है तो इस बात की संभावना को नकारा नहीं जा सकता है कि यह जल अपने साथ फॉस्फोरस को लेकर नदियों में समा जाता है। इसी तरह डेयरी उद्योग और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से निकलने वाले अपशिष्ट में भी नाईट्रोजन और फॉस्फोरस के यौगिक होते हैं। इन स्रोतों के जरिए भी आवश्यकता से अधिक पोषक तत्व नदियों तक पहुंच सकते हैं।

क्या है समाधान?

जलीय वनस्पतियों की उत्पत्ति एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जब तक यह प्रक्रिया प्रकृति के नियंत्रण में संतुलित है तब तक इसे प्राकृतिक चक्र का अंग मानकर स्वीकार किया जा सकता है। मानवीय हस्तक्षेप और मानव निर्मित अपशिष्ट के प्राकृतिक जलस्रोतों में मिल जाने की वजह से जब यूट्रोफिकेशन होता है तो इसका खतरा जलस्रोत को तो होता ही है, नुकसान से मानव भी अछूता नहीं रहता। इस प्रक्रिया से वर्तमान का सबसे कीमती प्राकृतिक संसाधन जल मानव की पहुंच से दूर होता है, जलस्रोत के प्रभावित होते ही जलीय आवागमन में समस्या उत्पन्न होती है। उक्त जलस्रोत की सुंदरता पर जब जलकुंभी या नीलहरित शैवाल हावी हो जाते हैं तो पर्यटन समाप्त होता है। साथ ही समाप्त हो जाते हैं उक्त जलस्रोत से मनुष्य को मिलने वाले सभी संसाधन।

अब सवाल यह उठता है कि इस समस्या का समाधान कैसे किया जाएं? क्या नए ट्रीटमेंट प्लांट बनाए जाए? क्या साबुन, डेयरी और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग पर नए प्रतिबंध लगाए जाए? क्या नालों और छोटी नदियों को बड़ी नदियों में मिलने से रोक दिया जाए?

सभी सवालों का जवाब है – नहीं। सिर्फ यूट्रोफिकेशन को रोकने के लिए सीवेज से नाईट्रोजन और फॉस्फोरस की मात्रा न्यूनतम करने के लिए नए ट्रीटमेंट प्लांट बनाना अथवा वर्तमान ट्रीटमेंट प्लांट में बदलाव करना तर्कसंगत नहीं है। देश भर में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट का निर्माण और प्रबंधन जारी है और सीवेज से नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की मात्रा कम करने की विधियां जोड़ने के लिए इन प्लांट्स की लागत लगभग डेढ़ गुना बढ़ जाएगी। ऐसा करने के बावजूद भी हमारे देश के मौसम को ध्यान में रखते हुए, यूट्रोफिकेशन पर नियंत्रण हो जाएगा ऐसा दावे के साथ नहीं कहा जा सकता। बेहतर प्रबंधन से यूट्रोफिकेशन की प्रक्रिया को जलस्रोत के स्वास्थ्य के हित में इस्तेमाल किया जा सकता है। लिहाजा वर्तमान परिस्थितियों में नाईट्रोजन और फॉस्फोरस को पृथक करने के लिए नए ट्रीटमेंट प्लांट लगाने या पुराने ट्रीटमेंट प्लांट में बदलाव करने का सुझाव स्वागतयोग्य नहीं है।

प्राकृतिक रूप से जो नाले या छोटी नदियां किसी बड़ी नदी में मिल रहे हैं, उन्हें नदी में मिलने से रोकना तो प्रकृति के तंत्र के विरूद्ध है।

अब बात कृषि क्षेत्र की, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का जो न्यूनाधिक प्रभाव अन्यत्र (फसलों पर, मृदा की उर्वरकता) होता है, उसे रोकने और कम करने के उपाय कई स्तरों पर किये जा रहे हैं। कृषि के क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों का कम इस्तेमाल करते हुए, किस तरह उन्नत फसलों की पैदावार की जा सके इस विषय पर शोध और अनुसंधान जारी है। कार्बनिक खेती और प्राकृतिक खेती जैसी विधियों को भी अपनाया जा रहा है। दूसरी ओर हाईड्रोपोनिक्स जैसी प्रोन्नत तकनीकों पर भी काम चल रहा है। कुछ समय पूर्व ही नीति आयोग ने जैविक उर्वरक और कार्बनिक उर्वरकों के उत्पादन, प्रचार और उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए एक टास्क फोर्स का गठन किया है। नमामि गंगे मिशन के तहत भी इस दिशा में प्रयास जारी हैं। उम्मीद है कि यह प्रयास बेहतर परिणामों की दिशा में अग्रसर होंगे।

आसान है समाधान

नदियों में यूट्रोफिकेशन को रोकने के लिए नदियों के वेटलैंड्स को संरक्षित करना बहुत जरूरी है। वेटलैंड्स नदी के लिए किडनी की तरह होते हैं, जो नदी के शरीर से गंदगी को फिल्टर कर देते हैं। नदी की मुख्यधारा के बाहर ही नाईट्रोजन और फॉस्फोरस समेत अन्य भारी धातुएं वेटलैंडस की वनस्पतियों में, दलदल में, जलीय खरपतवारों में रूक जाती है।

एक कहावत है कि जब दुश्मन से जीतना मुश्किल हो, तो चतुराई से उसे अपना हितैषी बना लेना चाहिए। इस समस्या का निदान इस तरह भी संभव है कि जो पोषक तत्व नदी तक पहुंच रहे हैं, उन्हें नदी तक पहुंचने से रोकने के असंभव प्रयास की बजाय उनसे नदी में उत्पन्न अवांछित जलीय वनस्पतियों की पैदावार और इस्तेमाल की ओर ध्यान देना चाहिए।

पश्चिम बंगाल और असम में लोगों ने जलकुंभी की समस्या से निदान पाने का रचनात्मक तरीका खोज निकाला है। पश्चिम बंगाल में जलकुंभी के तने से जैविक अपक्षय योग्य (बायोडिग्रेडेबल) कागज बनाया जाता है, जिससे कप, प्लेट, डिब्बे आदि तैयार किये जाते हैं। सामूहिक भोज के आयोजन के लिए लोग इन बर्तनों का उपयोग करना पसंद कर रहे हैं। ये बर्तन प्लास्टिक का अच्छा विकल्प साबित हो रहे हैं। इस तरह के उद्योग से एक ओर स्थानीय लोगों को रोजगार मिल रहा है, दूसरी ओर जलकुंभी का नियंत्रण होने के साथ प्लास्टिक का बेहतर विकल्प जनसामान्य को मिल रहा है। कागज बनने के बाद जलकुंभी के बचे हुए हिस्से से जैविक खाद बनाई जाती है, यानी धरती से आए पोषक तत्व धरती को दोबारा लौटा दिए जाते हैं।

इसी तरह असम के ग्रामीण इलाकों में जलकुंभी से योगामैट (योगासन में प्रयुक्त होने वाली चटाई) बनाई जा रही है। इस इकोफ्रेंडली चटाई को देश–विदेश में ग्राहकों का अच्छा प्रतिसाद मिल रहा है। इसी तरह जलकुंभी के पौधे को सुखाकर उससे विविध सजावटी और हस्तशिल्प की सामग्री भी तैयार की जा रही है। ये उद्योग एक ओर ग्रामीणों को रोजगार और व्यापार के अवसर दे रहे हैं वहीं दूसरी ओर इनके लिए कच्चे माल की आपूर्ति जल, जमीन और जंगल को कोई हानि नहीं पहुंचा रही है और ना ही इन लघु उद्योगों से किसी किस्म का हानिकारक अपशिष्ट निकल रहा है।

जलकुंभी के तने का प्रयोग हस्तशिल्प में करने के अलावा पौधे के अन्य भागों से जैविक खाद बनाई जाती है, इस खाद के माध्यम से भूमि के पोषक तत्व पुनः भूमि में पहुंच जाते हैं।

नदियों में आवश्यकता से अधिक पोषक तत्व खासकर नाईट्रोजन और फॉस्फोरस के पहुंचने को किस तरह नियंत्रित किया जा सकता है, यदि नियंत्रण के बावजूद यह पोषक तत्व नदियों तक पहुंच गए तो कैसे इनका प्रबंधन किया जा सकता है? क्या यह प्रबंधन हमें पर्यावरण संरक्षण से संबंधित राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति की ओर अग्रसर कर सकता है? किन मानवीय भूलों की वजह से जलकुंभी भारत के जलस्रोतों के समक्ष समस्या बन गई? इस विषय पर सतत विमर्श प्रज्ञाम्बु के अगले अंक में भी जारी रहेगा।

संपर्क
गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र (cGanga)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर 208016, उत्तर प्रदेश, भारत
Email: info@cganga.org, Website: www.cganga.org, Contact us: +91 512 259 7792
©cGanga, 2023